पंडित राहुल सांकृत्यायन की सामाजिक चेतना

रूबी त्रिपाठी
पूर्व सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय)
हिन्दी विभाग,
आर्य कन्या डिग्री कालेज
(संघटक महाविद्यालय,इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय) इलाहाबाद,उ0प्र0,

साहित्य समाज का प्रेरक और नियामक होता है, तो समाज भी साहित्य को वह भूमि देता है, जिस पर साहित्य खड़ा होता है। मुख्यतः साहित्य का आधार जीवन होता है। वह जीवन की आधार–शिला पर ही अवलंबित रहता है। दिनकर का मानना है–''साहित्य की अट्टालिका जीवन की आधारशिला पर खड़ी होती है और साहित्यकार के हृदय के तार तब तक नहीं बजते, जबतक उन पर जीवन का आघात नहीं होता।[1] जीवन मनुष्य का ही व्यक्त होता है और मनुष्य समाज में रहता है। समाज से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य मूलतः सामाजिक प्राणी है। अतएव, वही साहित्यकार महान हो सकता है जो समाज के प्रति प्रतिबद्ध हो, जिसमें सामाजिक चेतना की प्रखरता हो, जो समाज के प्रति पूर्णतः उन्मुख हो, समर्पित हो।

साहित्यकार सामाजिक होता है। सामाजिक वह है, जो संवेदना ग्रहण कर सकता है। संवेदना की जागृति का क्षण आत्म साक्षात्कार का भी क्षण है सामाजिक अथवा सामाजिकता व्यक्ति को अपने वृत्त से ऊपर उठाकर विराट तक पहुंचाती है।

पंडित राहुल सांकृत्यायन समाज के प्रति प्रतिबद्ध थे ओर वे ऐसे समाज के निर्माण का स्वप्न देखते थे, जहां ऊंच–नीच, सवर्ण–अवर्ण, अमीर–गरीब का भेद न हो, जहां धार्मिक परंपरा का कोई आडंबर न हो, श्रम की प्रतिष्ठा हो, मनुष्य ईश्वर पर भरोसा करने के बजाए अपने बाहुबल पर विश्वास करे, प्रत्येक को सामाजिक न्याय मिले और प्रगति का समान अवसर भी।

ईश्वर के प्रति धारणा

राहुल जी ईश्वर में विश्वास नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि उसी के नाम की आड़ में सारे अनर्थ होते हैं। सारी अनीतियां पलती हैं। जिस समस्या, जिस प्राकृतिक रहस्य को जानने में मनुष्य अपने को असमर्थ पाता है, उसी के लिए वह ईश्वर का ध्यान करता है। हम अपने अज्ञानता को स्वीकार करने में शर्माते हैं इसलिए उसका संभ्रांत नाम ईश्वर ढूंढ लिया गया है।

समाज में वर्ग वैषम्य, शोषक–शोषित, अमीर और गरीब के अस्तित्व को वैध घोषित करने के लिए 'ईश्वर' का नाम लिया जाता है। धर्म की धोखाधड़ी को यथार्थ और उसे न्याय सम्मत साबित करने के लिए ईश्वर का ख्याल बहुत सहायक है। एक ओर हम अछूतों से घृणा करते हैं दूसरी ओर हम ईश्वर

और धर्म की दुहाई देते हैं। महापुरुषों, संतों, ऋषियों में व्याख्या दिए, धर्म की महान पुस्तकें लिखीं, परन्तु मनुष्यों के ऊपर पशुओं की तरह होते उन अत्याचारों को समूल नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।

राहुल जी की इस स्थापना को हम अविकल स्वीकार करें या न करें, परन्तु इससे उनकी कांतिकारिणी दृष्टि एवं समाज के प्रति उनके गहरे सरोकार का पता चलता हैं वे मनुष्य के बाहुबल को जगाकर सामाजिक क्रांति के पक्षधर हैं, न कि धर्म शास्त्र की दुहाई देकर उसे असहाय बनाना चाहते हैं–''मनुष्य जीवन उसके हाथ में है। ईश्वर और देवताओं का सहाय लिए बिना उपनिषदों के रहस्य रूप पर विस्मित और चकित हुए बिना वह अपने जीवन को जैसा चाहे बना सकता है।[2]

सामाजिक विकास के लिए अर्थ का समान विभाजन

राहुल जी समाजवादी यथार्थ के कट्टर समर्थक हैं। उन्हे मार्क्सवादी करार देकर आलोचना का पात्र भी बनाया गया है, परन्तु वे अपने सिद्धांतों पर हिमालय के समान अडिग रहते हैं। मार्क्सवादी विचारधारा ने कला और साहित्य के संबंध में सर्वथा एक विशिष्ट दृष्टि को जन्म दिया है। द्वंद्वात्मक विकास की मार्क्सवादी धारणा के अनुसार उत्पादन–संबंधों एवं उत्पादक शक्तियों के संघर्ष से जीवन का भौतिक विधान बदलता है और चूंकि भौतिक विधान अंततोगत्वा बौद्धिक विकास को निर्धारित करता है, अतः उसके बदलते ही कानून, राजनीति, धर्म, दर्शन और परंपरा आदि सभी बदलने लगते हैं।

समाज के विकास का प्रभावी बाधक तत्व है धन का अभाव। समाज का विविध स्तरों पर शोषण होता है थोड़े से पूंजीपतियों द्वारा, जिनके हाथ में पूंजी है। प्रभुत्व है। सत्ता है। इसलिए राहुल जी चाहते हैं कि साहित्य और कला में समाजवादी यथार्थ का प्रबल आग्रह हो। कलाकार का कर्तव्य है कि वह लोगों को समाजवादी विचारों में दीक्षित करने के लिए अपनी कला का उपयोग करे। समाजवादी कला श्रमिक जनता के हितों से संबद्ध है। साहित्य रचना में इस बात पर ध्यान दिया जाए कि विषय–वस्तु और रूप दोनों ही दृष्टियों से वह जनता को समझे तथा पूंजीवाद की समाप्ति तथा समाजवाद के निर्माण में जनता सहायक बने।[3] राहुल जी जितना समाज के दुःख से संवेदित व प्रभावित हैं, उतना साहित्यिंक गतिविधियों से नहीं। वे समाज की सारी बुराइयों की मूल में पूंजीवाद को मानते हैं, '' समाज में जो चोरी, बेईमानी भ्रष्टाचार, जाति–पांति जैसी चीजें हैं, वे व्यक्ति–विशेष की देन नहीं, पूंजीवादी अवस्था की देन है। व्यक्ति तो इस व्यवस्था का एक निरीह प्राणी है।''[4]

दुनिया को बदलो, भागो नहीं

मनुष्यों की स्वतंत्र चिंतन के वे बड़े हामी हैं। वे ऐसे समाज का क्षय चाहते हैं जहां सामंतवाद और पुरोहितवाद है, जहां प्रतिभाशाली अर्थाभाव में उचित शिक्षा नहीं ले पाता और धनवान विश्व की सर्वोच्च उपाधि पा लेता है। किसान और मजदूर जिसके लिए अपनी जवानी धूल में मिलाते हैं, अपनी नींद हराम करते हैं, वह उन्हें भूखा नंगा रख करके भी संतुष्ट नहीं होता, बल्कि पग–पग पर उन्हें अपमानित करना

अपना कर्तव्य समझता है।[5] एक ओर किसान मजदूर की अवहेलना और दूसरी ओर प्रतिभाओं को विकसित न होने देना, कली को ही कुचल डालना है।

सतमी के बच्चे (कहानी) हो या 'भागो नहीं दुनिया को बदलो', वोल्गा से गंगा, सिंह सेनापति, मधुर स्वप्न, जय यौधेय और 'विस्मृत यात्री' सब में लेखक की प्रखर सामाजिक चेतना का पता चलता है ओर उनकी क्रांतिकारिणी दृष्टि का भी। वे पलायन में विश्वास करने वाले नहीं है, परिस्थिति की विषमता में अपना पथ प्रशस्त करने वाले हैं। सतमी के सभी बच्चे बुद्धू, सुद्धू, मद्धू और संतू अर्थाभाव में इस संसार को छोड़ देते हैं। उन्हें मलेरिया, जूड़ी से बचाने के लिए एक आना उधार नहीं मिलता। लेखक ऐसी व्यवस्था के प्रति घोर आक्रोश तो व्यक्त करते ही हैं परन्तु पलायन नहीं करते।

रूपी कहानी रूपी जैसी नारी की अशेष व्यथा–कथा है, जिसे आजीवन न आश्रय मिल पाता है, न सुरक्षा। 'मेम साहब' निम्न मध्य वर्ग की नारी है। अचानक करोड़पति से विवाहित होकर आसमान में उड़ जाती है। बेहिसाब खर्च करती है। एक दिन ऐसा आता है कि नौकरों को बिना वेतन के भगाना पड़ता है और मेमसाहब कहीं की नहीं रहती। गोलू, मधुपुरी, डोरा, चंपो आदि आर्थिक मार की शिकार हैं। पूंजीवादी व्यवस्था से आहत हैं। उनके जीवन में न सुरक्षा का भाव है, न अपना कोई बोध।

अतः लेखक मानता है कि सारी सामाजिक विसंगतियों का दोषी व्यक्ति नहीं, व्यवस्था है। जिस व्यवस्था में व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकार रहेगा, शुभ लाभ से सारी शक्ति केन्द्रित रहेगी उस व्यवस्था में रूपी, डोरा, चंपो, लाला, मधुपुरी, गोपालू, मेम साहब जैसे पात्र स्वतः जन्म लेंगे और नारकीय जीवन को भोगकर चल बसेंगे।[6] परन्तु लेखक इससे अपने को कत्तई अलग नहीं मानता और डंके की चोट पर कहता है कि व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकार समाप्त करके ही ऐसी सामाजिक विसंगतियों से व्यक्ति को बचाया जा सकता है।

नारी की स्वतंत्रता

सतमी के बच्चे तथा अन्य कहानियों में नारी की अपनी अस्मिता हेतु संघर्ष और उसमें उसकी पराजय का बोध कराते हुए लेखक उसकी आर्थिक स्वतंत्रता की ओर संकेत करते हैं। नारियों को वे पीड़ित शोषित और पराधीन देखना नहीं चाहते। वे सती प्रथा और पर्दाप्रथा के घोर विरोधी हैं। नारियों को पुरुषों के समान समाज में स्वतंत्रता का अधिकार मिले यह उनका विचार है। स्वतंत्रता के लिए जरूरी है कि नारी को समुचित शिक्षा मिले, समाज में समानता का दर्जा भी। यह सब निर्भर करता है, पुरुष की मानसिकता और समाज–व्यवस्था पर और यह सर्वविदित है कि वर्तमान सामाजिक ढांचे को बदले बिना नारी स्वतंत्रता का नारा कितना हास्यास्पद है। औरत को पति की सम्पत्ति से न केवल रोटी, कपड़ा और मकान मिले, वरन् उसका सम्पत्ति पर समान अधिकार हो।

कट्टर सनातनी ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी सनातन धर्म की रूढ़ियों को उन्होंने अपने ऊपर से उतार फेंका और जो भी तर्कवादी धर्म था तर्कवादी समाज शास्त्र उनके सामने आते गए उसे ग्रहण करते गए और शनैः शनैः उन धर्मों एवं शास्त्रों के भी मूल तत्वों को अपनाते हुए उनके बाह्य ढांचे को छोड़ते गए। सनातन धर्म से आर्य समाज, आर्य समाज से बौद्ध धर्म ओर बौद्ध धर्म से मानवधर्म, यह राहुल जी के धार्मिक विकास का क्रम है। बौद्ध धर्म का अनीश्वरवाद उनके जीवन का अंग बन गया है। इस विषय मे ंवे इतने निश्चिंत हैं कि यह नास्तिकता उनकी किसी सचेतन चेष्टा का परिणाम नहीं है, मानों यह उनके साथ पैदा हुई।

जहां पर दुःख कातरता, परधर्म के प्रति सहिष्णुता, त्याग, बलिदान आदि धर्म के प्रधान लक्षण हैं वहां मजहब आपस में बैर कराता है। साम्प्रदायिकता की आग में राजनेता अपने स्वार्थ की रोटी सेंकते हैं। धर्म के नाम पर जनता का शोषण होता है। हिन्दुओं ने दस करोड़ आदमियों को चमार, मुसहर, डोम बनाकर उन्हें जानवर से भी बदतर कर दिया। जब कोई उनमें से मंदिरों में जाता है तो कह देते हैं पोथी में इसके खिलाफ लिखा है। पोथियां, शास्त्र, आचार सब मनुष्यों ने अपनी सुविधानुसार बनाए हैं।[7]

अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा

संस्कृत साहित्य के राजशेखर के समान राहुल जी यायावर हैं। उनका पर्यटन सोद्देश्य एवं लक्ष्याभिमुख होता है। उनकी घुमक्कड़ी वृत्ति का ही फल है कि अनेक धार्मिक एवं राजनीतिक वलयों से संवलित होने पर भी उनके अध्ययन एवं चिंतन में जड़ता, संकीर्णता और पूर्वाग्रह का समावेश नहीं हो पाया है। उनके रचित शास्त्रों में सार्वभौमता के तत्व प्रतिष्ठित हुए हैं। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में पवित्र निर्झर की तरह निरंतरता, निरंकुशता एवं गतिशीलता के दर्शन होते हैं। उनकी यात्रा के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं – प्राचीन और अर्वाचीन विषयों का अध्ययन और देश देशांतरों के सांस्कृतिक जीवन की अधिक से अधिक प्रत्यक्ष अनुभूति। इन्हीं दोनों उद्देश्यों ने उन्हें एक महान पर्यटक और महान अध्येता के रूप में लोक प्रतिष्ठ किया।

उनके ज्ञानाश्रयी तथा चिकित्सक एवं निष्पक्ष अनुसन्धान के पक्षधर होने के और हमारी सांस्कृतिक एवं वैचारिक धरोहर के विविध आयामों को जिज्ञासुओं के सामने यथातथ्य प्रस्तुत करने के आग्रह के कारण राहुल जी ने बौद्ध दर्शन से संबंधित कई ग्रन्थ तिब्बत की कई बार यात्रा करके बड़े परिश्रम से उपलब्ध किए।

सिंह सेनापति (उपन्यास) का मूल उद्देश्य बुद्धकला के वातावरण, रहन–सहन, संस्कृति और सभ्यता का चित्र खींचकर उसका नये युग से सामंजस्य करना है। उस काल में गणराज्यों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है यथा उसकी दशा, सुख–वैभव, व्यक्ति के व्यक्तित्व का समाज के साथ कैसा समन्वय था, राजतंत्रों की प्रजा की त्रस्त दशा, गुरुकुलों के आचार्यों एवं विद्यार्थियों का संबंध, तत्कालीन विवाह

पद्धति, युद्ध शैली, विवाह का स्वरूप आदि। अतीत के प्रति इस गहन प्रत्यावर्तन से वर्तमान को दिशा और गति मिलती है। राहुल जी इतिहास के कंकाल में साम्यवाद की सांस भरना चाहते हैं। साम्यवाद में जहां तक मानवीय आदर्शों की स्थापना का प्रश्न है, वहां तक किसी को विरोध नहीं है। वे आदर्श सभी कालों व देशों की संपत्ति होते हैं। किन्तु आधुनिकवाद के रूप में यह एक नवीन वस्तु है।[8]

राहुल जी ने यायावरी से अपार ज्ञान अर्जित किया है तथा इतिहास में झांक कर वर्तमान का रूप संवारना चाहा है। प्रत्येक क्षेत्र में अहर्निश यात्रा ही उनकी जीवनधारा बन गई है। बौद्ध धर्म की मान्यता के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध जीवनी कृति 'मेरी जीवन यात्रा' में अपनी गतिवादी मंतव्य प्रकट करते हुए लिखा है कि ''प्रत्येक धर्मोपदेश उस नाव की तरह पार उतरने के लिए है, न कि सिर पर बोझ की भांति ढोए चलने के लिए।''

राहुल जी अपनेपन को मनुष्य के लिए मिटाने वालों में अग्रगण्य हैं। उन्होंने डेढ़ सौ से अधिक पुस्तकों की रचना करते हुए हिन्दी को अपने आचार्यत्व द्वारा दिशा और गति दी है। धर्म, दर्शन, लोक साहित्य, जीवन, राजनीति, इतिहास, पुरातत्व, भाषा शास्त्र, आलोचना, कहानी, उपन्यास, अज्ञात साहित्य के शोध गवेषणा द्वारा समाज की अव्यवस्था की शल्य क्रिया कर उसे विकासोन्मुख किया है। 'सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' के संकल्प को चरितार्थ किया है।

संदर्भ :

1. साहित्य की उपयोगिता शीर्षक लेख : रामधारी सिंह दिनकर
2. महापंडित राहुल सांकृत्यायन, दिनकर, पृष्ठ 13
3. मार्क्सवादी कला दृष्टि और समाजवादी यथार्थ, डॉ. नवल किशोर, आलोचना, 1964 पृष्ठ 9
4. दिमागी गुलामी : राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद पृष्ठ 40
5. तुम्हारी क्षय (1947) : राहुल सांकृत्यायन
6. राहुल जी की कहानियों में सामाजिक विसंगतियां, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ 68
7. भागो नहीं दुनिया बदलो, पृष्ठ 112
8. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा : डॉ. रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 दिल्ली –6, सं. 1986 पृष्ठ 165–66

****